राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 69 जुलाई-दिसम्बर 2021 अंक 2

रामाश्रम सत्संग (रजि.), ग़ाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक **पृष्ठ**

1. अब कैसे छूटै राम नाम रट लागी..... 1
2. गौतम बुद्ध के बताये पाँच मराकबे..... 2
3. मन, विचार-शक्ति और मुक्ति, अपनी स्थिति को कैसे परखें?..... 6
4. अनमोल मोती..... 11
5. नियमित साधना का महत्व..... 14
6. विनम्र आचरण में ही हमारा हित..... 17
7. दिल की सफाई, गुरु की आवश्यकता..... 20
8. मौलाना रूमी की प्रेरक कथा..... 22
9. आशीर्वाद के छांव तले..... 23
10. Bhakti and Its Nine Forms..... 25

राम संदेश

वर्ष 69 जुलाई-दिसम्बर 2021 अंक-2

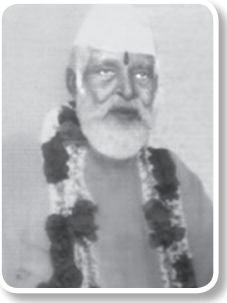

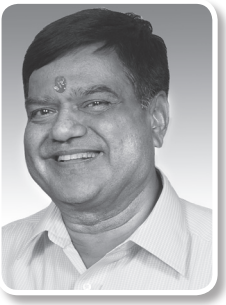

संस्थापक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी
सम्पादक : श्री उमा कान्त प्रसाद (आचार्य एवं अध्यक्ष)

संत रविदास

अब कैसे छूटै राम नाम रट लागी।

प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभु जी, तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

गौतम बुद्ध के बताये पाँच मराकबों का बयान (परिचय)

महात्मा गौतम बुद्ध ने जो पाँच मराकबे (ध्यान) अपने शिष्यों को तालीम फरमाये हैं, वह लिखता हूँ। उनको पढ़कर सत्संगी भाई इन मराकबों का खुलासा समझ लें। मतलब तो नियत, फेल (कर्म) और ख्यालात में अपनी और दुनियाँ की भलाई के लिये हैं, न कि कोई खास सूरत मराकबे के जरिये से ऐसी कायम करना है जो कि सिर्फ बातचीत की हद तक ही कायम रहे और वैसी रहनी न बने।

बाज अभ्यासियों को ऐसे मराकबों से सिर्फ एक हालत और कैफियत पैदा हो जाती है जो चंद दिन के लिये सिर्फ एक जौकी कैफियत (आनंद की दशा) होती है, मगर जाहिरी अमली पहलू कभी अखत्यार नहीं किया जाता है। मसलन हर जर्रे में उसी का जलवा नजर आता है या अपने आपको सब जर्रात और मखलूक (प्राणीमात्र) यहाँ तक कि छोटे-से-छोटे जर्रे में देखता है। बल्कि तमाम सृष्टि को अपने में देखता है, वगैरा वगैरा। लेकिन यह सब बातें तसल्लीबख्श नहीं हैं जबकि उस हाल के मुताबिक जाने या अनजाने, इरादे या बिला इरादे, काम न होने लग जाये।

आप सड़क से गुजर रहे हैं और एक चार बरस का बच्चा सर्दी की वजह से कांप रहा है और उसके पास कपड़ा नहीं है, इसलिए वह रो रहा है। आपके पास दो रुपये भी जेब में मौजूद हैं और थोड़ी देर में आप उन रुपयों से दिवाली के दिन बाजार से एक तस्वीर खरीदना चाहते हैं। अब इस मुकाम पर अगर आपकी बनावटी कैफियत इजाजत न दे कि बच्चे को कपड़ा खरीदकर दिया जाये बल्कि तस्वीर को खरीद ही लिया जाये तो मेरे ख्याल में मराकबे से या अभ्यास से या किताबी इल्म से हासिल की हुई कैफियत कोई हस्ती नहीं रखती। यह एक मिसाल है। इस किस्म की हजारों मिसालें मौजूद हैं। खुलासा और नतीजा यह निकलता है कि इल्म, ज्ञान, कैफियत और हालत से ऐसी आदत बन जानी चाहिये कि हर कर्म बिला इरादे उसी आदत के मुताबिक होने लग जाये।

गैर कौमों पर आजकल यह इल्जाम है कि वह बिल्कुल रूहानियत से खाली हैं। लेकिन मैं देखता हूँ कि जो बात उनको मालूम हो गई है उसको साबित करने को न सिर्फ लेक्चर देते हैं बल्कि उनके कर्म भी आदतन उसी के मुताबिक हो गये हैं।

फतेहगढ़ के मिशन शफ़ाखाने में एक मिस साहिबा डाक्टर थीं। उन्होंने अपने दिल और जान को दूसरों की भलाई के लिये सरासर वक्फ (न्यौछावर) कर दिया था। तमाम दिन और रात जिस्म से और दिल से जनता की खिदमत किया करती थी और यह सब खिदमत बिना मुआवजे और बिना गरज थी। शायद निष्काम कर्म इसी का नाम हो।

लोग कहते हैं कि इसकी तह में कोई गरज (स्वार्थ) शामिल थी। अगर कोई गरज हो भी तो उनकी गरज दिल में होगी खिदमत तो तुम्हारी बिला मुआवजे की जाती रही। क्या सरकारी शफाखानों में नौकरी और तनख्वाह की गरज नहीं है? तनख्वाह भी मिलती है, हर मरीज अपनी हैसियत के मुताबिक खिदमत भी करता है, खुशामद भी करता है, और एक ही मुल्क के रहने वाले भी हैं। लेकिन जो हमदर्दी (या बेरुखी) के नजारे मुल्क के शफाखानों में दिखलाई देते हैं, वह आपका दिल जानता है। इसी से आप इल्म और अमल की असलियत जाँच लें।

पाँच मराकबे

अब आप महात्मा गौतम बुद्ध के पाँच मराकबों (अभ्यास) और उनके अनुभव कर लेने की तरफ गौर कीजिये। बुद्ध भगवान का कौल (कथन) है – ''जो शख्स खुदपरस्ती में फंसा रहता है और मराकबे में मशगूल (सम्मिलित) नहीं होता वह दुनियाँ के असल मन्शा को भूल गया है।''

1) **पहला मराकबा - मोहब्बत और प्रेम का ध्यान:** इस ध्यान में अभ्यासी अपने दिल को इस तरह साधता है कि मैं तमाम मखलूकात (जीव मात्र) की, यहाँ तक कि अपने दुश्मनों की भी भलाई चाहता हूँ। इसको सर्व-मैत्री कहते हैं और इसमें यह प्रार्थना की जाती है ईश्वर सबका भला करें।

2) **दूसरा मराकबा - रहम, करुणा या दया का ध्यान:** इसमें यह ख्याल किया जाता है कि तमाम प्राणी मुसीबत में हैं और अपनी ख्याली ताकत (इच्छा शक्ति) के जरिये से उनके रंज और गम की तस्वीर अपने दिल

के सफे पर खींची जाती है। यह इसीलिए है कि हमारी रूह को मखलूक (जनता) की हालते–जात पर बहुत कुछ रहम और तरस आये और कुछ मदद करने की मंशा पैदा हो।

3) **तीसरा मराकबा – खुशी का ध्यानः** इसमें हम दूसरों की भलाई का ध्यान करते हैं और उनकी खुशी में तहेदिल से शामिल होते हैं और खुद भी खुशी मनाते हैं।

4) **चौथा मराकबा – कसाफत या नापाकी (अपवित्रता) का ध्यानः** इसमें हम बुराई के बुरे नतीजे और गुनाह (पाप) और बीमारियों के अंजामों (परिणामों) पर गौर करते हैं। इन नापाक हरकतों (पाप या अपवित्र) कर्मों से हासिल खुशी अक्सर थोड़ी देर की होती है और उसके नतीजे बहुत खतरनाक होते हैं।

5) **पाँचवा मराकबा – शुकराना अदा करने का ध्यान हैः** हम मौहब्बत और नफरत, जुल्म और जबरदस्ती, दौलत और कंगाली, किसी चीज की परवाह नहीं करते और अपनी हालत पर शाकिर (कृतज्ञ) होकर, हर हालत में ईश्वर का शुक्रिया अदा करते रहते हैं।

ऊपर लिखे हुए मराकबों में मसरूफ (तल्लीन) होकर बुद्ध भगवान के चेलों ने इनसे ब्रह्म–विद्या हासिल की। दरअसल इनमें हकीकी (सत्य की) तलाश है।

अब सवाल यह रह जाता है कि अमल किस तरह किया जाये। मालूम होना चाहिये कि मराकबे की निस्बत जनता की वाकफियत के लिए तफसील (विवरण) का पता देना तो मुमकिन है लेकिन अमल और शगल (अभ्यास) के वास्ते अधिकार, कुव्वते बरदाश्त (सहन शक्ति) और कुव्वते कबूल (ग्रहण शक्ति) वगैरा की जरूरत देखी जाती है क्योंकि हर शख्स एक ही तरह की काबलियत नहीं रखता और हर अभ्यासी की एक ही तरह की तालीम नहीं होती।

मुख्तलिफ तबियतों के अभ्यासी होने की वजह से हरेक की काबिलियत की जाँच–पड़ताल करके उनके शौक के मुआफिक (रुचि के अनुसार) तालीम का दर्जा कायम किया जा सकता है।

अगर मराकबों के अमल की खास तरकीब और इजाजत आम बातिनी कैफियत (आन्तरिक दशा) के उसूलों पर दे दी जाये तो मेरा तजुर्बा यह है कि

बजाये फायदे के नुकसान होगा और वक्त बेकार जायेगा। मेरा मतलब जाहिर न करने में तंगदिली का नहीं है बल्कि उसूल का सही मंशा लेकर चलना बहुत जरूरी है। अगर आँख बनाने में अपरेशन के लिए उस वक्त का इंतजार न किया जावे जो उसके पकने और तैयार होने में लगता है और आपरेशन कर दिया जाये तो क्या आपरेशन कामयाब कहलायेगा? बल्कि मेरे ख्याल में तमाम उम्र के लिए मरीज को मायूस होकर बैठा रहना पड़ेगा।

उसी तरह आंतरिक अभ्यास करने वाले हल्कों (सिलसिलों) में या सत्संगी संस्थाओं में भाग लेने वाले जानते हैं कि गुरु लोग जब किसी मराकबे का खास फायदा और असर अपने किसी खास दोस्त को पहुँचाना चाहते हैं तो उसके लिए एक खास इंतजाम करते हैं और इस खास इंतजाम के करने में अलावा जाहिर जरूरी बातों के एक खास रूहानी हिम्मत और अमल का होना भी जरूरी होता है। महज इकतरफा हिम्मत बाज वक्त बेफायदा, बल्कि खतरनाक साबित हो सकती है।

इसलिये हरेक से, खासकर अपने हल्के के भाइयों से, यह नसीहत करने के काबिल बात है कि किसी खास मराकबे या किसी खास कैफियत के असर को अपने अंदर पैदा करना हो तो खास इंतजाम के साथ तवज्जोह और हिम्मत को इस्तेमाल में लायें।

परमात्मा चाहेगा, फायदा होगा।

-('अमृत रस' से उद्धृत)

ज्ञानी लोगों के सानिध्य में बैठने पर भी मूर्ख लोग उनमें गलतियां ही ढूंढते रहते हैं -- ज्ञानेश्वर

अपने विचारों को आवारा कुत्तों की तरह अचिन्त्य चिंतन में भटकने न दिया जाए -- ज्ञानेश्वर

गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

मन, विचार-शक्ति और मुक्ति, अपनी स्थिति को कैसे परखें?

सत्संगी भाइयों को यह जानने की अक्सर इच्छा रहती है कि सत्संग में आकर हमने कुछ तरक्की की है या नहीं, और की है तो किस हद तक? बहुधा लोगों की यह शिकायत होती है कि हमें सत्संग में शामिल हुए बरसों बीत गए लेकिन हम जहाँ से चले थे आज भी वही हैं। यह बात सच भी है क्योंकि उन्होंने सच्चे मायने में अपने अन्दर परिवर्तन करने की कभी कोशिश नहीं की। अपने बुरे कर्मों पर उन्हें परदा डालने की आदत पड़ गई है। अगर कोई गुनाह उनसे हो जाता है और उनकी आत्मा उन्हें गुनाह करने से रोकती है तो वे अपने आपको झूठ–सच बतलाकर ये कोशिश करते हैं कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह हालात (परिस्थिति) के अनुसार ठीक है।

यह उनका भ्रम है कि गुनाह को भी गुनाह न समझकर उसे सही समझते हैं। अगर सत्संगी भाई अपने दिलों पर हाथ रखकर देखें तो पता चलेगा कि वो अभी तक तरक्की की राह पर खड़े होने योग्य भी नहीं हुए हैं। नियत समय पर संध्या पूजा कर लेना ही काफी नहीं है बल्कि इसमें तो दुनियां की लेशमात्र चाह भी गुरु को अर्पण करनी होगी। हममें से कितने ऐसे हैं जिन्होंने दुनियावी इच्छाओं को त्याग दिया है? शायद एक भी नहीं। लेकिन उन्नति सब चाहते हैं। नीचे लिखी हुई बातें अगर ध्यान में रखी जाएं तो अपनी सही हालत का पता लग जायेगा।

1. गुरु में श्रद्धा और विश्वास पहले से कुछ घटा या बढ़ा? अगर घटा है तो उसका सबब सोचने की कोशिश करें। अगर अपने में दोष दिखें तो भगवान से प्रार्थना करें, रोयें और गिड़गिड़ायें ताकि वे दोष दूर हों, और इस ओर बराबर प्रयत्न करते रहे। अगर गुरु में दोष दिखने लगे तो उन्हें अपने मन का ही ऐब समझें। परमात्मा गुण दोषों से रहित है और गुरु उसका जाहिरी (प्रकट) रूप है इसलिए वह भी गुण दोषों से रहित है। सत्संग में आकर पूर्ण विश्वास के साथ गुरु धारण करने के बाद दोष निकालने का हक अब

आपको नहीं है। गुरु के बारे में वितर्क मन से, ध्यान से निकालना होगा और गुरु की आज्ञा में चलना होगा। बुजुर्गान का कहना है कि यदि गुरु को कोई भगवान से अलग समझता है तो वह 'काफिर' (नास्तिक) है।

2. यह देखना चाहिये कि अपने स्वभाव में कुछ अन्तर आया है या नहीं। स्वभाव में पहले जितनी खराबियाँ थी वो कुछ दूर हुई या नहीं। अच्छे स्वभाव के मायने खुशामद के नहीं है बल्कि सरल, शुद्ध बर्ताव से है। स्वभाव बहुत ही मीठा होना चाहिए। अगर कोई कड़वी या सख्त बात कहनी हो तो बहुत तहजीब और सरलता से कहनी चाहिये जिससे दूसरे के दिल पर चोट न लगे। बाज लोगों का विचार है, चूँकि हम सच्ची और खरी बात कहते हैं इसलिये हम साफ-साफ और अकड़ कर कह सकते हैं चाहे किसी को वह बुरी लगे या भली। यह अज्ञान है। सच बोलने वालों में कुछ घमण्ड सा आ जाता है, जो कि सच्चे परमार्थी को लेशमात्र भी नहीं होना चाहिये। अच्छे स्वभाव की दूसरी पहचान यह है कि ऐसे आदमी को पड़ोसी प्यार करने लगते हैं। अगर हमको पड़ोसी नफरत की निगाह से देखते हैं तो उसमें खोट अपना ही समझना चाहिये और उसको दूर करने की कोशिश करनी चाहिए।
3. वाणी वश में होती जायेगी। बोलने की इच्छा कम होगी। ऐसा आदमी जो आध्यात्म विद्या में उन्नति कर रहा हो कभी भी बेलगाम नहीं बोलेगा। मौका और माहौल देखकर, अपने पर काबू करके बोलेगा। फिजूल बातें करके कभी भी अपने साथ बैठने वालों का वक्त नष्ट नहीं करेगा, जो बात कहेगा तौलकर कहेगा और कहने से पहले यह देखेगा कि इससे किसी का दिल तो नहीं दुखेगा।
4. अगर अभ्यासी तरक्की के रास्ते पर है तो दूसरे के ऐबों (दुर्गुणों) पर हमेशा परदा डालेगा, अपने ही दोषों पर नजर रखेगा। अगर दूसरों के कुछ ऐब उसे नजर भी आते हैं तो उन्हें नजरंदाज (अनदेखा) कर देता है या ऐसा बन जाता है जैसे उसको कुछ पता ही नहीं।
5. उसकी जरूरीयात (आवश्यकताओं) में कमी आती चली जाती है आसायश (ऐश्वर्य) और आडम्बर के सामान को वह फिजूल समझकर त्यागने लग जाता है, उनमें उसे दिलचस्पी नहीं रहती। अपने पास उन्हीं चीजों को रखता है जिन्हें वह निहायत जरूरी समझता है। बहुत सादा मिजाज हो जाता है। दुनिया के लोग उसे कंजूस भले ही कहें लेकिन वह ऐसा होता नहीं है।

6. उसे झूठ से नफरत और सच्चाई से प्रेम होता जाता है और धीरे-धीरे वह सच्चाई मुजस्सिम (साक्षात) बन जाता है। उससे झूठ इस तरह डरकर भागता है जैसे शेर को देखकर लोग घरों में छिप जाते हैं। उसके रहन-सहन, आचार-विचार और व्यवहार में सच्चाई का ही प्रदर्शन होता है। झूठे लोग उसके पास जाते हुए दहशत मानते हैं, घबराते हैं।

   यह मानना पड़ेगा कि सच्चाई की जिन्दगी बसर करना आसान खेल नहीं है। इस उसूल पर चलने वाले से दोस्त, पड़ोसी, सम्बंधी द्वेष करने लगते हैं लेकिन जो तरक्की की राह पर जा रहा है वह इसकी परवाह न करते हुए सच्चाई की राह पर बढ़ता चला जाता है। उसमें आत्मबल बढ़ जाता है और वह लतीफ (कोमल) हो जाता है। सच्चाई पर चलने वाले को बे-इन्तहा असीम मुसीबतों का सामना करना पड़ता है लेकिन उन्हें बरदाश्त करते-करते उसकी आत्मिक शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है जिससे उसे परमार्थ में फायदा ही फायदा होता है।

7. ऐसा आदमी कभी फिजूलखर्च नहीं होता। वह धन कभी नहीं जोड़ना पसन्द करता। अपने खर्च लायक रखकर बाकी धन अच्छे कामों में खर्च कर देता है, जैसे मोहताजों को दान देना, गरीब लड़के-लड़कियों की पढ़ाई के लिये खर्च देना, वगैरा।

8. उसे नींद कम आने लगती है। अगर पहले वह 8 या 10 घंटे सोता था तो तरक्की करने पर 4-6 घंटे से ज्यादा नहीं सोता। हर समय उसका ध्यान भगवद् भजन में ही लगा रहता है। काम के निश्चित समय के अलावा समय में उसका ध्यान ज्यादा से ज्यादा समय के लिए अपने गुरु के बताये हुए शगल (साधन-अभ्यास) में, धार्मिक किताबें पढ़ने या ईश्वर चर्चा करने में ही व्यतीत होता है। जिनका ध्यान इन बातों में नहीं लगता वे तरक्की से दूर हैं। और उनकी दुनियावी चाहें अभी जबर (प्रबल) हैं। उन्हें चाहिये कि अपनी दुनियावी चाहों को कम करते जायें।

9. क्रोध में कमी आ जाती है। पहले अगर थोड़ी सी बात पर क्रोध आ जाता था अब उतनी जल्दी नहीं आता और अगर आता भी है तो जल्दी चला जाता है। अगर कहीं जरूरत भी पड़े तो क्रोध दिखावटी और काम चलाने भर के लिये करता है, अपने मन पर उसका प्रभाव नहीं होने देता।

10. पराई बहू-बेटियों की तरफ ध्यान भी नहीं जाता। अगर पहले जाता भी था

तो धीरे-धीरे कम हो जाता है और एक हालत वह आ जाती कि सामने आने पर पहचानता भी नहीं। स्त्रियों की मौहब्बत तो दर किनार उनकी सोहबत तक से हमेशा बचता है और विषय भोगों में भी कमी आ जाती है।

11. दूसरों को हमेशा अच्छी राय देता है और ऐसा करते वक्त अपना स्वार्थ उसमें कभी शामिल नहीं करता।
12. प्रेम की भावना दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यह प्रेम का मार्ग है। ईश्वर प्रेम है और गुरु प्रेमस्वरूप है। उनमें अपने को लय करके उसका स्वभाव प्रेममय हो जाता है। उसमें कोई गरज शामिल नहीं रहती। स्वार्थ से किया हुआ प्रेम झूठा प्रेम होता है। प्रेम किसी से भी हो, बेलाग होना चाहिए।
13. दुख, मुसीबतें और तकलीफे ज्यादा आने लगती हैं और उन्हें वह खुशी से बरदाश्त करता है। यह तरक्की की निशानी है। यह चीजें भक्त को ईश्वर की तरफ से नियामत में मिलती है। दुनियाँ में खुशहाल नहीं रहने पाता। दुख मुसीबतें तो पल-पल पर भगवान की याद को ताजा करती रहती है। जिस हाल में परमात्मा रखता है उसी में खुश रहता है, कभी शिकवा-शिकायत नहीं करता और परमात्मा का शुक्राना अदा करता रहता है।
14. अपनी निन्दा उसे बुरी नहीं लगती। वह निन्दक को अपना मित्र और हितैषी समझता है क्योंकि उसके जरिये उसे अपने दोष दिखाई देते है जिन्हें वह दूर करने की कोशिश करता है। अगर उसकी कोई झूठी निन्दा करता है तो भी उसका बुरा नहीं मानता, बल्कि उनके सुधार के लिए दुआ माँगता है।
15. उसके आलस्य में कमी आती जाती है। कभी बेकार बैठना पसंद नहीं करता। अगर दुनिया का कोई काम करने को नहीं भी होता तो भगवत् भजन में ही अपने को लगाये रखता है।
16. एकान्त सेवन की इच्छा करने लगता है। ज्यादा भीड़-भाड़ से तबीयत घबराती है। इसकी वजह यह है कि ध्यान एकान्त में अच्छा जमता है, इसलिए एकान्त सेवन अच्छा लगता है।
17. निष्पक्ष विचारों की धारणा नित्य बढ़ती जाती है। हरेक से समानता का व्यवहार होने लगता है किसी का पक्ष-विपक्ष नहीं करता। अपना निर्णय देने में अपने सम्बन्धी का भी लिहाज नहीं करता।
18. सदैव नेक, धर्म और परिश्रम की कमाई से ही अपना गुजारा करता है। कुछ लोगों की धारणा है कि यदि वेतन कम है और घूस या रिश्वत गुजारा करने

के लिए ली जाये तो कुछ बुरा नहीं। कोई इस विचार के होते है कि ठेके इत्यादि में पाँच प्रतिशत लेना तो अवश्य जायज है। कोई-कोई चोरी छिपे ही रिश्वत लेते है, उसे जाहिर नहीं करना चाहते। यह सब बातें गलत है। नौकरी पेशा लोगों को अपनी तनख्वाह के अलावा कुछ भी लेना, चाहे वह नकद हो, किसी चीज की शक्ल में हो या सेवा की शक्ल में हर तरह की गलत हैं यहाँ तक कि तनख्वाह लेना और उसकी एवज में पूरा काम न करना भी हलाल की कमाई नहीं कही जा सकती। सत्संग में शामिल होने पर अगर रिश्वत लेना छूट जाये या आदत में कमी आने लगे तो समझना चाहिए कि तरक्की की तरफ बढ़ रहे हैं। लेकिन उसका गरूर नहीं होना चाहिए। सत्संग में तरक्की और पूजा में ध्यान लगाने के लिए हक और हलाल की कमाई निहायत जरूरी है।

19. बहुत सी बातें बगैर पढ़ी ही समझ में आने लगती है। यदि एकाग्रचित्त होकर बैठ सकता हो और शब्द या प्रकाश में ध्यान जमने लगा हो और चढ़ाई कर रहा हो तो बहुत से इल्म गैवी परज्ञान उसको ऊपर से मिलते हैं। बहुत सी बातें उसको अपने आप मालूम हो जाती हैं, जिनकी तसदीक (पुष्टि) होती है, धार्मिक किताबों से।
20. गुरु या परमात्मा में विश्वास इतना दृढ हो जाता है कि भोजन, वस्त्र या अन्य आवश्यक वस्तुओं की उसे चिन्ता ही नहीं रहती - रोज व रोज इसकी चिन्ता कम होती जाती है।
21. दीन, दुखी, मोहताज, धर्मात्मा और भले लोगों से हमेशा मित्रता का व्यवहार करता है। द्वेष किसी से नहीं करता। ऐसे मनुष्य की दुश्मन भी तारीफ़ करते हैं।

यह कुछ बाते जो ऊपर लिखी हैं, उनसे हम अपनी हालत का मिलान स्वयं कर सकते हैं। निष्पक्ष होकर अपनी हालत को देखना चाहिये। अपने आपको धोखा देने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अगर दूसरे को धोखा दिया जाये तो उसका काटा हो सकता है, लेकिन स्वयं को धोखा देने वाले मनुष्य की उन्नति कभी सम्भव नहीं।

(राम संदेश जनवरी-फरवरी 2001)

परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लालजी महाराज के अनमोल वचन

अनमोल मोती

- मान लीजिये कोई बात आपके आचार्य ने आपसे कही या किसी के जरिये अपने ख्याल को जाहिर किया तो अच्छाई इसी में है कि उसे मान लेना चाहिए। अपनी अक्ल से उसे परखना नहीं चाहिए।

•••••

- मन के बन्धनों को ढीले करते चलो। प्रत्येक वस्तु को परमात्मा की समझो। मोह छूटता जायगा। जिस हाल में वह रखे उसमें खुश रहो। गुरु के कहने पर चलो और परमात्मा की याद से ग़ाफिल न हो, ईश्वर तुम्हें अपना प्रेम देगा।

•••••

- किसी चीज को अच्छा समझकर ग्रहण करना 'अनुराग' और किसी चीज को बुरा समझ कर उसे छोड़ना 'वैराग्य' है। जो वस्तु ईश्वर की तरफ को ले जाती है, उसे पकड़ो, वही अनुराग है। और जो वस्तु ईश्वर से छुड़ाती है, उसे छोड़ते चलो, यही वैराग्य है।

•••••

- यह मन ही है जो हमारी आस्तीन का साँप बन बैठा है। दोस्त बन कर वही हमको खा रहा है। यह कहता रहता है कि दुनिया में अपना धर्म पूरा करो। ऊँचा ले जाकर करता है। लेकिन याद रखो कि मुख्य धर्म है अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना। बाकी सब धर्म Secondary (गौण) हैं। जीवन का लक्ष्य यही है।

•••••

- जो ऊँचे अभ्यासी हैं, उन्हें मन दूसरी तरह मारता है। अगर भाइयों की सेवा का काम सुपुर्द कर दिया गया तो समझने लगे ''मैं गुरु हूँ'', पैर पुजा रहे हैं, मन आनन्द ले रहा है। यह क्या किया तुमने? अहंकार में फँस गये! अधम योनियों में गये। जिसने अपने को गुरु समझा वह तो गया। गुरु तो केवल एक है – परमेश्वर ! वही असली गुरु है।

•••••

- अगर मन किसी डर से जिद्द (हठ) छोड़ देता है (चाहे वह लालच के कारण, चाहे किसी वस्तु के न मिलने से) तो वह छोड़ना नहीं है। असल छोड़ना वह है कि वह चीज मौजूद है और ताकत इस्तेमाल भी है और कोई डर भी नहीं है लेकिन अब उस चीज को तबीयत नहीं चाहती।

•••••

- तकलीफ बहतरी (कल्याण) के लिये आती हैं। ईश्वर को जिसका उद्धार मंजूर होता है उस पर शुरू–शुरू में तकलीफ आती हैं। इनसे आत्मा का मैल धुलता है। तकलीफों से पुराने संस्कारों का कफ्फारा यानी बदल हो जाता है।

•••••

- मोक्ष कभी पिछले संस्कारों से नहीं मिलती। वह तप करने से ही प्राप्त होती है। लिहाजा उसके लिये तप की बड़ी जरूरत होती है। अपने मन की चाल पर ख्याल रखना उसको बराबर सँवारते रहना 'तप' है। तम से रज, रज से सत्, सत् से आत्मा में मिला देना (यानी ईश्वर की याद में मिला देना) यही असली तप है। मोक्ष को हासिल (प्राप्त) करने के लिए कोई मियाद (अवधि) नहीं है।

•••••

- परमात्मा के प्रेम को बढ़ाना चाहिए। इसकी दो तरकीबें हैं– एक तो इस तरह की किताबें पढ़ना जो इस से ताल्लुक रखती हैं और उन पर अमल करते चलना। दूसरी तम और रज से निकल कर सत् पर आ जाना (Character Formation (यानी अपने को सुधारना), और सन्तों की सोहबत करना।

•••••

- जब मनुष्य दुनिया की चीजों को आहिस्ता–आहिस्ता भोग कर यह जान लेता है कि इनमें असली सुख नहीं है, यह दुनिया रहने की जगह नहीं है, तब वह तम से हट कर सत् की तरफ मुड़ता है। तुम भी सत् पर आ जाओ। उस मालिक पर विश्वास करो, उसकी शक्ति के साथ एवं इस प्रकृति माता के साथ सहयोग करो। घर के लोगों को जिनके खिलाने, पिलाने, पढ़ाने और दुनियावी फरायज पूरा करने का काम तुम्हें सौंपा गया है, उसे उसकी सेवा समझ कर करो। हुकूमत तो सिर्फ मालिक की होती है और मालिक सिर्फ एक ही है– वह है परमात्मा। तुम्हें तो यहाँ सेवा के लिये भेजा है, तुम अपने को मालिक

कैसे समझते हो? अपने घर वालों की ख्वाहिशात की मातहती में मत पड़ो, मगर उन्हें गुनाह करने से रोको। कोई तुम्हारे काम नहीं आयेगा, कोई तुम्हारे मतलब का नहीं हो सकता।

•••••

- जो हर बाधा में टक्कर लेता हुआ चला जाय, जो इन सब को ठोकर मार कर आगे बढ़ता जाय वही सच्चा परमार्थी है। उसे किसी की परवाह नहीं, वह अपनी आजादी चाहता है।

•••••

- मन से दुनिया को छोड़ो। सब काम इसी तरह से होते रहेंगे जैसे होते हैं, लेकिन सिर्फ भाव बदलना पड़ेगा। हर काम को परमात्मा का काम समझ कर उसकी सेवा करो और इस भाव को स्थायी बना लो। लगातार यही ख्याल रहे कि जो काम तुम कर रहे हो वह ईश्वर की सेवा है। यह दुनिया ईश्वर की है, सभी ईश्वर के हैं, जो काम कर रहे हैं वह ईश्वर की ही सेवा कर रहे हैं।

('नवनीत' से उद्धृत)

तुम अंधकार से प्रकाश की ओर तभी जा सकते हो जब तुम उसकी तलाश में हो, और ये तलाश बिल्कुल वैसी ही होनी चाहिए, जैसे कि बालों में आग लगा हुआ व्यक्ति तालाब की तलाश में होता है।

– *रामकृष्ण परमहंस*

जो वेद और शास्त्र के ग्रंथों को याद कर लेता है किंतु उनके यथार्थ तत्व को नहीं समझता, उसका वह याद रखना व्यर्थ है।

– *महर्षि वेदव्यास*

जिसने इच्छा का त्याग किया है, उसको घर छोड़ने की क्या आवश्यकता है, और जो इच्छा का बंधुआ मजदूर है, उसको वन में रहने से क्या लाभ हो सकता है? सच्चा त्यागी जहां रहे वहीं वन और वही भवन-कंदरा है।

– *महर्षि वेदव्यास*

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

नियमित साधना का महत्व

प्रत्येक व्यक्ति के समीप भगवान रहते हैं। कहते हैं हमारे हृदय में भगवान हैं। शरीर के प्रत्येक अंग में जहाँ आत्मा की अनुभूति होती है, विश्व के कण-कण में परमात्मा विराजमान हैं। ऋषियों-महापुरुषों ने साधना करके शरीर के कुछ ऐसे हिस्से बताये हैं जो बाकी हिस्सों से अधिक संवेदनशील हैं। उनमें अधिक संवेदना है। वहाँ मन को एकाग्र करके प्रभु की अनुभूति सरलता से हो जाती है। प्रभु इतने समीप होते हुए भी हमें क्यों नही दिखते? पूज्य गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्णलाल जी महाराज) को 5-6 वर्ष की आयु में कृष्ण भगवान के साकार रूप में दर्शन होते थे। हमें क्यों नहीं होते हैं?

हमारे भीतर में निर्मलता नहीं है। हम अपने पिछले जन्मों के संस्कारों का कूड़ा करकट अपने भीतर में डालते रहते हैं। हम आँखों से बुरे दृश्य देखते हैं, कानों से बुराई सुनते हैं, निन्दा सुनते हैं, मुख से कटु वचन बोलते हैं। ये तीन मुख्य इन्द्रियाँ हैं जिनसे हम भीतर में और अधिक कूड़ा करकट इकठ्ठा करते हैं। हमारे पिछले संस्कार तो हैं ही और भी नये पैदा होते रहते हैं। ये हमारी आत्मा पर आवरण हो जाते हैं। हम मन्दिर में जाते हैं। भगवान की मूर्ति के आगे परदा लगा होता है तो हम पुजारी जी से प्रार्थना करते हैं कि वह परदा हटा कर हमें भगवान के दर्शन करा दें। इसी तरह भगवान की मूर्ति तो हमारे भीतर में है, परदा हमने स्वयं लगा रखा है। हम इस परदे को क्षण प्रतिक्षण और मजबूत बनाते चले जाते हैं।

यह परदा कैसे टूटे? मनुष्य के हाथ में दो ही साधन हैं- एक प्रेमाभक्ति का, दूसरा ज्ञान का। ज्ञान के भी दो रूप हैं- एक बुद्धि से समझना व दूसरा अनुभूति से अनुभव करना। कुछ वेदान्ती ऐसे हैं जो कहते हैं कि सर्वभूतों में परमात्मा सर्वव्यापक है, कण-कण में है, भीतर में भी वही है, बाहर भी वही है। यह शरीर, मन, बुद्धि सब कुछ उसी का है। यही उसका विराट रूप है। जो लोग इस तरह समझते हैं उनका कहना है कि अन्य कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं है। यह कुछ हद तक ठीक है। यदि उपरोक्त बात समझ में आ जाती है, मन स्थिर हो जाता है, कुछ सोचता नही है, संकल्प-विकल्प नहीं उठाता और इस बात की समझ आ जाती है कि सब कुछ वही है, तो उनको कुछ नहीं करना है। प्रमाद, अच्छे या बुरे विचार मन

में तरंगे उठाकर हमारी दृष्टि में दोष उत्पन्न कर देते हैं। दृष्टि इन स्थूल (बाहर की) आँखों की व दृष्टि मन की भी। इसीलिये हम भेदभाव देखते हैं, अच्छाई-बुराई, पाप-पुण्य देखते हैं। उनका कहना है कि यही माया है व माया को उत्पन्न करने वाला अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण ही हमें भेदभाव, द्वैत, मेरा-तेरापन, दिखता है। यह गलत नहीं है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति न तो इसको भली-भाँति समझ पाता है और न ही उस बात को पकड़ कर अभ्यास में, अपने व्यवहार में उतार सकता है। इसीलिये ज्ञानियों ने, खास कर महर्षि रमण ने, ऐसे वेदान्तियों को सावधान किया है कि जब तक हमारे भीतर में अनुभूति न हो तब तक साधन करते रहना चाहिये।

यह नहीं है कि हमने समझ लिया कि ''मैं ही ब्रह्म हूँ।'' मुझसे ही इस सृष्टि की उत्पत्ति है। तमाम धन-दौलत, सामान मेरा ही है और उधर उसी समझ-बूझ में हम सबका शोषण भी करते जाते हैं। तो यह तो सच्ची समझ-बूझ नहीं आई। अभी तक 'मैं' यानी अहंकार काम कर रहा है। इसीलिये महर्षि रमण ने सावधान किया है कि जब तक अनुभूति न हो अर्थात् आत्मा के ऊपर के आवरण दूर न हों तथा यह स्थिति निरन्तर न रहे, सहज अवस्था न हो, यानी प्रतिक्षण भगवान के दर्शन न होते हों, तब तक साधना का त्याग नहीं करना चाहिये। वे तो यहाँ तक कह जाते हैं कि यदि संन्यासी के हृदय में एक भी संकल्प उठता है तो वह संन्यासी नहीं है क्योंकि संकल्प उठने से आत्मा और माया के बीच परदा आ जाता है। यह साधन जो ज्ञानी, बुद्धिजीवी लोग हैं जिनकी बहुत ही तीव्र बुद्धि होती है, वे ही कर पाते हैं। इसके लिए नींव जो है वह शुद्ध चरित्र की है।

दूसरा रास्ता प्रेमाभक्ति का है। भक्ति मुख्यत: नौ प्रकार की है परन्तु इसका और विस्तार किया गया है। उस विस्तार में हमें नहीं पड़ना है। ईश्वर कृपा से यदि किसी महापुरुष का संग मिल जाता है और वे हमें अपना लेते हैं, तो यदि हम उनकी सेवा करें, उनके साथ प्रेम करें, जैसा कि भगवान कृष्ण ने गोपियों के साथ किया था उसी प्रकार का व्यवहार यदि हम करें, तो हमें सफलता सरलता से मिल सकती है। इससे सरल साधना और कोई नहीं है। विचार में भी भगवान हैं, वाणी में भी भगवान हैं, आँखों में भी भगवान बसते हैं, कानों में उनकी मधुर बांसुरी की ध्वनि सुनाई देती है। बुद्धि में भगवान हैं, हृदय में भगवान हैं, रोम-रोम में भगवान हैं। ये कैसे डोलते हैं? जैसे सूरदास जी ने बताया है। भगवान उँगली छोड़कर तनिक दूर होते हैं तो सूरदास जी क्या कहते हैं- कहाँ भागोगे? यह शारीरिक प्रेम नहीं, बहुत उच्च कोटि का प्रेम है। भगवान मैंने आपको अपने हृदय में बसा लिया है। हृदय से

निकल कर कहाँ जाओगे? आप तो मेरे अंग–अंग में ही समाये हुए हैं। ऐसी प्रीति है जो टूटे, छोड़े न छूटे। क्या है यह आपकी लीला? पर आप कहाँ जायेंगे? इस साधना के लिए नारद जी के भक्ति–सूत्र में जो मुख्य बातें बतलाई हैं वे हैं– अपना सर्वस्व निछावर कर देना, अपनी कोई इच्छा और कोई आशा न रखना।

कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसके भीतर में कोई इच्छा न हो। कहने में बड़ा सरल लगता है परन्तु इच्छा रहित बनना तो भगवान बुद्ध बनना है। आशा रहित होना है, अमर बनना है। ''राज न चाहूँ मुक्ति न चाहूँ, मन प्रीति चरण कमला रे।'' मुझे राज नहीं चाहिये, संसार की वस्तुएँ नहीं चाहिये। हम सबसे उत्तम वस्तु मुक्ति भी नहीं मांगते। भगवान हमें इस धरती की रज चाहिये। मोह न हो, हमारा संसार की वस्तुओं के साथ प्रेम न हो, चिपकाव न हो। त्याग की भावना हो, भगवान के चरणों के साथ प्रेम हो। सिवाय प्रभु के चरणों के अन्य किसी के साथ लगाव नहीं। मेरा मुझ में कुछ नहीं है– यह शरीर तेरा, मन तेरा, धन तेरा, संतान तेरी, सब कुछ तेरा यहाँ तक कि मेरा जो भाव है, आचरण, बुराई–भलाई प्रभु ये सब तेरी ही हैं, मेरा अपना कुछ नहीं है। वह यह भी अभिमान नहीं करता कि मैं शुद्ध कर्म करता हूँ। कुछ नहीं, मैं केवल प्रभु के द्वार का कुत्ता बना रहूँ। वह धनी का द्वार नहीं छोड़ता। ऐसी भक्ति चाहता है कि यह द्वार न छूटे उसे अभिमान नहीं, सिर्फ मान है कि प्रभु मेरा है, मेरा वह पति है, मेरा वह पिता है, मेरा वह सर्वस्व है।

अधिकारी बनने के लिए और भी कई बातें आवश्यक हैं, जैसे कुसंग का त्याग करना, बुरे वातावरण का त्याग करना, आदि। यह अभी तक अपरा भक्ति है, संसार की भक्ति है। हम देखते हैं ब्रज में लोग भगवान का नाम कम लेते हैं, राधा–राधा का नाम ही सबकी जिव्हा पर रहता है। राधा का नाम इतना क्यों फैला है? राधा भगवान में लय होकर भक्ति का अन्तिम रूप हैं, पराभक्ति का रूप हैं। कान्ता–भाव, राधा–भाव जीवन का लक्ष्य है–भगवान से एक होकर। सूफ़ी इसको ''हमा ओस्त'' कहते हैं। ''अहम् ब्रह्मास्मि'' में भी वही है। इससे भी ऊपर जाना है 'हमा अजोस्त' अर्थात् मैं उसी से हूँ। किसी भी जिज्ञासु की साधना पूर्ण नहीं होती जब तक वह स्वयं पूर्ण होकर औरों को भी पूर्ण नहीं बनाता है। हम सबको ही राधा जी से प्रेरणा लेनी होगी। लेकिन इस स्थिति तक पहुँचने के लिए नियमित तौर से और जहाँ तक हो सके निरन्तर ही साधना तो करनी ही होगी।

(सन्त प्रसादी– भाग 12)

विनम्र आचरण में ही हमारा हित

(श्री रमण महर्षि ने 1902 में एक शिष्य के प्रश्नों का उत्तर दिया था जिसे तमिल भाषा में 'नान यार' नामक पुस्तक में संकलित किया गया। उसी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद 'मैं कौन हूँ' पुस्तक में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत है उसी पुस्तक से लिए गए कुछ अंश)

प्रश्न - मन स्थिर (शान्त) कैसे होगा?

उत्तर - 'मैं कौन हूँ?' के अन्वेषण द्वारा ही मन शान्त होगा। 'मैं कौन हूँ?' का विचार, अन्य सभी विचारों को नष्ट कर देगा तथा जिस प्रकार शव जलाने वाला लुआठा भी अन्त में स्वयं जल जाता है, उसी प्रकार यह भी स्वयं नष्ट हो जाएगा। तब वहाँ स्वरूप दर्शन होगा।

प्रश्न - 'मैं कौन हूँ?' के विचार को निरन्तर बनाए रखने का उपाय क्या है?

उत्तर - जब दूसरे विचार उदित हों, तो व्यक्ति को उन पर ध्यान नहीं देना चाहिए, बल्कि अन्वेषण करना चाहिए कि 'वे विचार किसके लिए उदित होते हैं?' चाहे जितने भी विचार उदित हों, उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता है। जैसे ही कोई विचार उदित हो, व्यक्ति को तत्परता से खोज करनी चाहिए कि 'किसके लिए यह विचार उदित हुआ?' उत्तर आएगा-'मेरे लिए'। इस पर जब व्यक्ति खोज करे कि 'मैं कौन हूँ?' तो मन अपने स्रोत में वापिस चला जाता है और उदित हुआ विचार शान्त हो जाता है। इसके बारंबार अभ्यास से मन अपने स्रोत में रहने की दक्षता विकसित कर लेता है। मन जो सूक्ष्म है, जब बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाहर जाता है, तो स्थूल नाम, रूप प्रकट होते हैं और जब यह हृदय में निवास करता है, तो नाम, रूप विलुप्त हो जाते हैं। मन को बाहर जाने से रोककर, उसे हृदय में स्थिर करने को अहंमुख या अंतर्मुखी होना कहते हैं। मन को हृदय से बाहर जाने देने को बहिर्मुखी होना कहते हैं। इस प्रकार जब मन हृदय में निवास करता है, तो 'मैं' जो सभी विचारों का मूल है, लुप्त हो जाता है और सदैव अस्तित्वमान् 'स्वरूप' प्रकाशित होता है। व्यक्ति चाहे जो भी करे, उसे बिना 'मैं' के अहंकार के कर्म करना चाहिए। जब कोई इस प्रकार से कर्म करता है, तो उसके समक्ष सब कुछ 'शिव-स्वरूप' के रूप में प्रकट होगा।

प्रश्न - क्या मनोनिग्रह के दूसरे उपाय नहीं हैं?

उत्तर - आत्म-विचार के अतिरिक्त, कोई अन्य उपाय उपयुक्त नहीं हैं। यदि दूसरे

उपायों से मन: नियंत्रण का प्रयास किया जाए, तो लगता है कि मन नियंत्रित है किन्तु वह पुन: प्रकट हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा भी मन स्थिर हो जाएगा किन्तु वह तभी तक नियंत्रित रहेगा जब तक कि प्राण नियंत्रित है और जब श्वसन आरम्भ होगा, तो मन पुन: गतिशील हो जाएगा तथा संचित वासनाओं के अनुरूप भटकेगा। मन और प्राण, दोनों का स्रोत एक ही है। निश्चित ही विचार, मन का रूप है। 'मैं' का विचार, मन का प्रथम विचार है और यही अहंकार है। जहाँ से अहंकार उत्पन्न होता है, वहीं से श्वसन भी आरम्भ होता है। इसलिए जब मन स्थिर होता है, तो श्वास नियंत्रित हो जाता है और जब श्वास नियंत्रित होता है, तो मन स्थिर हो जाता है। किन्तु सुषुप्ति में, यद्यपि मन स्थिर रहता है किन्तु श्वास नहीं रुकता है। यह ईश्वरीय इच्छा के कारण है ताकि शरीर सुरक्षित रहे और लोग यह नहीं समझें कि यह मर गया है। जाग्रत एवं समाधि की अवस्थाओं में, जब मन स्थिर हो जाता है, तो श्वास नियंत्रित रहता है। प्राण, मन का स्थूल रूप है। मृत्यु के क्षण तक मन, प्राण को शरीर में रखता है। जब शरीर मर जाता है तो मन, प्राण को साथ ले जाता है। इसलिए प्राणायाम का अभ्यास मनोनिग्रह में सहायक तो है किन्तु यह मन का नाश नहीं करता।

प्राणायाम की भाँति मूर्तिध्यान, मंत्रजप, आहार-नियमन, इत्यादि मन को स्थिर करने में सहायक हैं। मूर्तिध्यान एवं मंत्रजप से मन एकाग्र हो जाता है। मन का स्वभाव है- सदा चंचल रहना। जैसे सदा हिलते रहनेवाले हाथी की सूँड़ में यदि एक जंजीर दे दी जाए, तो वह हाथी किसी अन्य वस्तु को पकड़ने का प्रयत्न किए बिना ही, उस जंजीर को पकड़ कर चलता रहेगा, उसी प्रकार मन को भी किसी नाम या रूप (ईश्वर के) में अनुरक्त रहने के अभ्यास से जोड़ा जाए, तो वह उसी को ग्रहण किए रहेगा। मन जब असंख्य विचारों के रूप में फैलता है, तो प्रत्येक विचार अत्यंत बलहीन होता है किन्तु विचारों के लीन (लुप्त) होते ही मन एकाग्र एवं बलवान हो जाता है। ऐसे मन के लिए आत्म अन्वेषण सरल हो जाता है। सकल नियमों में से श्रेष्ठ है मित एवं सात्विक आहार। इन नियमों के पालन से मन में सद्गुण की वृद्धि होती है, जो आत्म-अन्वेषण में सहायक है।

प्रश्न - समुद्र की लहरों की भाँति संचित विषय-वासनाओं के असीमित विचार प्रकट होते हैं, वे सब कब नष्ट होंगे?

उत्तर - स्वरूप-ध्यान तीव्र होते ही, वे विचार क्रमश: नष्ट हो जाएँगे।

प्रश्न – क्या आदिकाल से चली आ रही विषय-वासनाओं का विनष्ट होना तथा स्वरूप मात्र बनकर रहना संभव है?

उत्तर – 'यह संभव है या नहीं?' इस संदेह को स्थान दिए बिना, निरन्तर स्वरूप ध्यान में सुदृढ़ रहना चाहिए। कोई चाहे कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो, 'मैं तो पापी हूँ, मेरा उद्धार कैसे हो सकता है?' यों दीन हो विलाप एवं चिंता न करते हुए, 'मैं पापी हूँ' के विचार को पूरी तरह से त्यागकर, यदि वह सतत स्वरूप ध्यान में संलग्न रहे, तो निश्चित ही सफल होगा।

शुभ मन और अशुभ मन, ऐसे दो मन नहीं हैं। मन एक ही है। वासनाएँ ही, शुभ एवं अशुभ, दो तरह की होती हैं। मन जब शुभ वासनाओं के वशीभूत हो, तब उसे शुभ मन कहते हैं और जब अशुभ वासनाओं के वशीभूत रहे, तब वह अशुभ मन कहलाता है।

प्रपंच विषयों में मन नहीं लगाना चाहिए तथा उसे दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। दूसरे लोग कितने भी बुरे क्यों न हों, उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए। राग-द्वेष, दोनों ही त्याज्य हैं। दूसरों को जो कुछ दिया जाता है, (वह सब) अपने आपको ही दिया जाता है। इस सत्य को जान लेने के बाद, भला कौन दूसरों को नहीं देना चाहेगा? अहंता के उदित होने से सब कुछ उदित होगा, अहंता के विलीन होने से सब कुछ विलीन हो जाएगा। हम जितना अधिक विनम्र हो आचरण करेंगे, उतना ही अधिक हमारा हित होगा। मन को निग्रहित करके, कोई कहीं भी रह सकता है।

प्रश्न – आत्म अन्वेषण का अभ्यास कब तक करना चाहिए?

उत्तर – जब तक मन में विषय-वासनाएँ रहती हैं, तब तक 'मैं कौन हूँ?' का अन्वेषण आवश्यक है। ज्यों-ज्यों विचार उठते हैं, त्यों-त्यों (उनके उत्पत्ति स्थान में ही) आत्म-अन्वेषण द्वारा उन सबका नाश करना चाहिए। आत्म-स्वरूप की प्राप्ति तक यदि कोई निरन्तर स्वरूप स्मरण में रहे, तो यह साधना ही पर्याप्त है। जब तक दुर्ग के भीतर शत्रु हैं, तब तक वे उससे बाहर आते रहेंगे। ज्यों-ज्यों वे बाहर आएँ तथा उन्हें मारते रहें, तो दुर्ग जीत लिया जाएगा।

–(साभार: श्री रमणाश्रम, तिरुवन्नामलै, तमिलनाडु)

दिल की सफाई, गुरु की आवश्यकता

(पूज्य गुरु महाराज द्वारा रचित ''गुरु शिष्य संवाद'' एक पुस्तक है जिसमें शिष्य के मन में चल रही विभिन्न शंकाओं का गुरु के द्वारा निराकरण किया जाता है। दरअसल ये शंकाएँ परमार्थ पथ पर चलने वाले साधक की होती हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक साधक के लिए बड़ी ही उपयोगी है। इसी पुस्तक से कुछ अंश यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं)

अगले दिन शिष्य फिर गुरुदेव दरबार में उपस्थित हुआ। गुरु कृपा से दिन प्रतिदिन उसकी श्रद्धा और विश्वास बढ़ते जाते थे। उसने प्रेम पूर्वक सीस नवाकर गुरुदेव के चरण कमलों की पावन रज अपने माथे पर लगाई और आज्ञा लेकर एक ओर बैठ गया। गुरुदेव ने कहा - ''वत्स, तुम्हारे दिल की सफाई अभी नहीं हुई। जो कुछ पूछना चाहते हो, निर्भय होकर पूछो।''

शिष्य ने नम्रता पूर्वक प्रश्न किया - ''प्रभू, मनुष्य जिस देश में, जिस जाति में, जिस समाज में और जिस तरह के माता-पिता के घर जन्म लेता है, उसके प्रभाव उसमें स्वत: मौजूद होते हैं। उनसे बचना बहुत कठिन है। क्या इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ?''

उत्तर- ''यह तो सत्य है, किन्तु इन विचारों को अपने दिल से निकाल देना ही तो दिल की सफाई करना है, यही तसव्वुफ कहलाता है। जब बर्तन में एक चीज भरी हुई है तो उसमें दूसरी चीज कैसे भरी जा सकती है। जब वर्तन खाली हो जायेगा तभी उसमें उससे अच्छी चीज रखी जा सकती है। साथ-ही-साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि बर्तन को केवल खाली ही न किया जाय, किन्तु उसको अच्छी तरह साफ भी कर लिया जाय। यदि अच्छी तरह सफाई न होगी तो दूसरी चीज जो उसमें रखी जाएगी वह भी गन्दी हो जायगी और उसमें मैल लग जायगा। ब्रह्मविद्या यह तो नहीं कहती कि अपने देश, जाति, समाज और माता पिता को छोड़ दो। ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, आवश्यकता इस बात की अवश्य है कि अपने दिल को धीरे-धीरे साफ करते चलो और उसे शुद्ध बनाते चलो। दिल में जो अनुचित विचार भर गये हैं उनको निकालते चलो और उसे सद्विचारों से भर दो। दिल के बनाने तथा उसकी सफाई का नाम ही तसव्वुफ अथवा ब्रह्मविद्या है। इसके सिवाय और कुछ नहीं।''

प्रश्न- ''बुरे विचारों को निकाल कर उसमें अच्छे विचार किस तरह भरे जायें?''

उत्तर- ''पहले किसी ऐसे महापुरुष का सत्संग करो जो पूर्ण धनी हो, कामिल हो। पूर्णधनी और कामिल वह है जिसने अपने मन, इंद्रियों आदि को जीत लिया है, आत्मसाक्षात्कार कर लिया है और जिसकी स्थिति आत्मा में है। इसी व्यक्ति को पीर यानी गुरु कहते हैं। उसके साथ रहने और सत्संग लाभ करने का नाम ही गुरु पूजा (पीर-परस्ती) है। यदि सौभाग्य से ऐसा महापुरुष मिले तो उसके पास दीनता पूर्वक जाओ और उसकी थोड़ी सी भी संगति को ईश्वर कृपा समझो। छेड़ छाड़ न करो, विनम्र होकर बैठो, उसकी बातों को ध्यान पूर्वक सुन कर उन पर मनन करो। तुम देखोगे कि दिल धीरे धीरे स्वयं उन्नति करने लगेगा।''

सन्त अथवा गुरु की पहिचान कठिन है, किन्तु यदि वास्तव में किसी को परामार्थ की सच्ची चाह है तो केवल गुरु की बातें सुनते रहने से, और उनका सत्संग लाभ करने से मन नित्य प्रति सद्विचारों से भरता जायेगा, आनन्द और मस्ती आ जायगी। गुरु की संगति में प्रकाश मिलेगा, अपनी त्रुटियों का आभास होगा और अपनी कमजोरियों पर दृष्टि जायेगी। धीरे-धीरे कुछ दिनों के सत्संग से आत्मा को शान्ति और आनन्द मिलेगा। जैसे, गर्मी के दिनों में कड़ी धूप से मारे हुए आदमी को वृक्ष की छाया में शीतलता और शान्ति मिलती है, इसी प्रकार संसार के थपेड़ों से झुलसे हुए मन को गुरु चरणों में बैठकर सत्संग लाभ करने से अनुपम शीतलता और शान्ति का अनुभव होता है। आरम्भ में यह बातें अपने आप में काफी हैं। ऐसे महापुरुषों के वचनों में प्रभाव होगा क्योंकि वे स्वयं परमार्थ की कमाई किये हुए हैं। जिन्होंने कमाई नहीं की है, केवल पुस्तक ज्ञान या सुनी सुनाई बातों से सम्बन्ध रखते हैं वे खोखले हैं, उनके वचन प्रभावकारी नहीं होते और यदि थोड़ा बहुत प्रभाव हुआ भी तो वह स्थायी नहीं रहता। गुरु के लिये यह आवश्यक है कि वह पोथी पूजने वाला न हो बल्कि उसका ज्ञान पोथियों से ऊँचा हो। ऐसे महापुरुष के विषय में किसी ने कहा है :

''राज दिल का जब सुनायेगा कभी, रूह सूए अर्श जायेगी तभी। जो कोई देखे हक का नज्जारा, करे किताबों को पारा पारा।''

(भावार्थ- जब वह अपने दिल का ज्ञान सुनायेगा अर्थात् अन्तःकरण को शुद्ध करने की बात कहेगा, तब उसको (शिष्य को) ईश्वरीय आनन्द प्राप्त होगा। जो

कोई चाहता है कि ईश्वर का दर्शन करूँ तो वह किताबों को अलग रखकर पहले अभ्यास करे जिससे अन्त:करण की सफाई हो।)

''पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय,
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।
पढ़ पढ़ कर पत्थर भये, लिख-लिख भये जो ईंट,
कबीर मन में प्रेम की, लागी नाहीं छींट।''

मौलाना रूमी की प्रेरक कथा

'तू' और 'मैं'

एक मनुष्य अपने प्रेमपात्र के दरवाजे पर आया और कुंडी खटखटायी। प्रेमपात्र ने पूछा, ''कौन है?''

बाहर से जवाब मिला, 'मैं' हूं।

प्रेमपात्र ने कहा, ''तुम्हें लौट जाना चाहिए। अभी भेंट नहीं हो सकती। तुम जैसी कच्ची चीज के लिए यहां स्थान नहीं।''

उसने समझा कि प्रेमपात्र का मुझसे अपमान हुआ है।

यह जवाब सुनकर वह बेचारा प्रेमी निराश होकर अपने प्रेमपात्र के द्वार से लौट गया। बहुत दिनों तक वियोग की आग में जलता रहा। अन्त में उसे फिर प्रेमपात्र से मिलने की उत्कण्ठा हुई और उसके द्वार पर चक्कर काटने लगा। कहीं फिर कोई अपमानसूचक शब्द मुंह से न निकल जाये, इसलिए उसने डरते-डरते कुंडी खटखटायी। प्रेमपात्र ने भीतर से पूछा, ''दरवाजे पर कौन है?''

उसने उत्तर दिया, ''ऐ मेरे प्यारे, 'तू' ही है।''

प्रेम-पात्र ने आज्ञा दी कि अब जबकि 'तू' 'मैं' ही है, तो अन्दर चला आ।''
(एकता में दो की गुंजाइश नहीं। जब एक ही एक है तो फिर दुई कहां?)

परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब के संस्मरण

आशीर्वाद के छांव तले

बात उन दिनों की है जब मेरी शादी ठीक हो रही थी। हम सब भंडारे पर पहुंचे थे। भंडारे के बाद गुरु जी के घर पर सत्संग हुआ वहां पूजा के बाद मेरी माता जी, गुरु जी से अपने परिवार का हालचाल बोली और बोली कि किरण के लिए यही लड़का है और एक फोटो उनकी तरफ बढ़ाया। गुरुजी बड़े प्यार से फोटो को अपने हाथ में लेकर और गौर से उसे देखे और मुस्कुरा दिए। मां ने कहा कि किरण के लिए लड़का देखे हैं बैंक में काम करता है। गुरुजी फोटो को गौर से देखने के बाद मेरी मां की तरफ बढ़ाएं और बोले इसे पकड़ो। मेरी मां समझी कि शायद फोटो पकड़ना है। लेकिन गुरु जी ने पुनः इन शब्दों को दोहराया ''इसे पकड़ो'' तो मां भी हंस पड़ी और गुरुजी भी हंसने लगे और फिर उसी लड़के से मेरी शादी हुई। हम दोनों का दांपत्य जीवन आज बहुत सुखी है उन्हीं के आशीर्वाद के छांव तले हम अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आज हम दोनों पति-पत्नी उनके बहुत ही आभारी हैं। गुरुदेव की कृपा ऐसे ही सबको मिलती रहे।

कृपा गुरुदेव की

हमारे गुरुदेव की महिमा अपरंपार है उनके बारे में जितना भी बताओ उतना ही कम है। घटना अक्टूबर भंडारे की है जब हम सब भंडारे जाने की तैयारी कर रहे थे, स्टेशन पहुंचने में थोड़ी देर हो गई सो वहां जब पहुंचे तो गाड़ी स्टेशन पर लग चुकी थी। मेरे पतिदेव कुली के पीछे भागे पर मैं सीढ़ियों पर तेजी से नहीं चल पा रही थी क्योंकि मेरी सांसे तेज-तेज चल रही थीं और मैं बहुत विवश महसूस करने लगी। मुझे लगा दूर से गाड़ी को देखकर कि अब मैं गाड़ी नहीं पकड़ पाऊंगी और मैं सीढ़ियों की रेलिंग पकड़ के वहीं बैठ गई और भरी निगाहों से देख रही थी और गुरु जी को याद किया। उन्हें प्रणाम किया, 'हे गुरुदेव', इस बार का भंडारा में लगता है मैं नहीं सम्मिलित हो पाऊंगी और इसी बीच पतिदेव गाड़ी के पास से मुझे बुलाने लगे, मैंने इशारे-इशारे में उन्हें यह बात समझाने की कोशिश की कि मैं बिल्कुल नहीं चल पा रही हूं और आप जाइए मैं आ

रही हूँ पीछे से इतने ही में मैंने थोड़ी आराम से सांस को अपने ठीक किया और आराम-आराम से सीढ़ियां उतरते प्लेटफार्म पर पहुंची और धीरे-धीरे मैं अपनी सीट पर पहुंच गई और गाड़ी में बैठ गई। गाड़ी में बैठने के बाद मैंने मन ही मन गुरुदेव को प्रणाम किया और धन्यवाद दिया कि मैं अच्छे से गाड़ी में बैठ गई। तभी एक यात्री बोला कि - अरे आज तो गाड़ी बहुत लेट कर रही है। अभी तक नहीं खुली। मैंने हंसते हुए उन यात्री से बोला अब खुल जाएगी मैं बैठ गई हूं ना। वो भी मुस्कुरा दिए और मेरे पतिदेव भी मुस्कुरा दिए और फिर गाड़ी चलने लगी। उस दिन गाड़ी में सभी यात्री कह रहे थे आज गाड़ी पूरे 15 मिनट लेट है और ऐसा कभी नहीं होता है। दरअसल यह गाड़ी 5 मिनट लेट भी नहीं चलती और आज पूरे 15 मिनट लेट है।

''जा पर कृपा गुरुदेव की होई, ता पर कृपा करे सब कोई''

मेरा गुरुदेव के चरणो में कोटि-कोटि नमन जो हर पल हमारी सुधि लेते रहते हैं, उनकी कृपा बस सब पर ऐसे ही बरसती रहे।

-(प्रस्तुतिः किरन वर्मा, मुज़फ्फरपुर)

यदि किसी समस्या का समाधान हो सकता है तो चिंता क्यों करें?
और यदि समस्या का समाधान नहीं हो सकता तो चिंता करना आपको कोई लाभ नहीं देगा।

- गौतम बुद्ध

चाहे आप कितने भी पवित्र शब्दों को पढ़ लें या बोल लें, पर जब तक आप इन शब्दों को प्रयोग में नहीं लाएंगे तब तक ये शब्द आपका कुछ भी भला नहीं कर सकते।

- गौतम बुद्ध

जिस तरह गंदे शीशे पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता, उसकी तरह गंदे मन-विचार वाले व्यक्ति पर ईश्वर के आशीर्वाद का प्रकाश नहीं पड़ता।

- रामकृष्ण परमहंस

Bhakti and Its Nine Forms

Bhakti essentially means the inherent attitude of the human soul to the Absolute Spirit. The human soul is the individualised, self-conscious and self-determining self-expression of theAbsolute Spirit in the cosmic system, and it has an inherent urge for liberating itself from all kinds of bondages and impurities imposed by the limitation of worldly existence and for being consciously reunited with theAbsolute Spirit.This urge for blissful reunion with theAbsolute, inherent in the very nature the finite spirit must express and unfold itself in and through suitable modifications and regulations of the mind and body. It has to manifest itself through properly disciplined and illumined thoughts, feelings, and desires, and through carefully regulated modes of conduct in this world. All thoughts, feelings, and desires have to be directed towards the Absolute or God, all modes of conduct have to move around God as the permanent centre of life, all the interests of life have to be concentrated in God, all the phenomena of the world have to be viewed and dealt with as the diversified expressions of the Divine Will. This is the demand of bhakti upon the psycho-physical system, in which the the individual spirit is embodied, and through which the spirit has to realize itself – to realise the Truth, Beauty, Goodness, and Bliss which pertain to its essential character within this cosmic self-expression of theAbsolute Spirit.

Psychologically speaking bhakti is integral and it involves emotional as well as intellectual and volitional elements. All the aspects of the personality of a bhakta have to be harmoniously developed with God as its chief centre of interest. The culture of bhakti demands an unflinching faith in the existence of God as the ground and source of the world, a refined and rational conception of God which may satisfy the intellect. An enlightened outlook on the world as related to God and on the place and function of man

in the scheme of this world and a spiritual view of the relation of every individual to the family, the community, the nation, and humanity. This is the intellectual aspect of bhakti, appart from which the emotional and volitional aspects can never be properly developed.

The more the idea of God in relation and the world experience developed and refined, the more are the religious relations of awe, wonder, admiration reverence, love and devotion spontaneously roused in the consciousness and the more do they transform and spiritualize the whole nature of the consciousness. It is such ideas and emotions that become dynamic in the volitional side of consciousness and find expression in appropriate forms of conduct. Thus bhakti has to be realized in all forms of self-expression of the human consciousness and in all the departments of the human life in this world.

Through the cultivation of bhakti a man should aspire for living a sublime and godly life in God's world. Though living and moving and acting in this world of phenomenal diversities, his consciousness should constantly be in living touch with the Infinite and Eternal onem in Whom, by Whom and for Whom all these diversities exist. Care or anxiety, disharmony or disquietude, fear or hatred, despair or despondency can have no place in such a God-centred consciousness. His life in all its expressions becomes peaceful and beautiful, sweet and grand, full of love nad sympathy for all. It is through the proper discipline of thought and speech, desires and actions, feelings and sentiments that such a life of bhakti has to be attained.

Teachers of bhakti have prescribed various forms of discipline for the realization of true bhakti in practical life. I shall briefly dwell here on the nine principal modes of self-discipline as taught in the Bhagavata, which is probably the most poetic and sublime, and at the same time the most authoratitive treatise on the culture of bhakti. The nine forms of the discipline are:

Shravana or listening;
Kirtana or singing;
Smarana or remembering;
Seva or serving;
Archana or worshipping;
Vandana or bowing;
Dasya or cultivating the attitude of a servant;
Sakhya or cultivating the spirit of a friend;
Atmanivedana or absolute self-surrender.

Each of these practices is, of course, with reference to God, theAbsolute Spirit.

ATMA-NIVEDANA

Atma-nivedana or absolute self-offering to the Supreme beloved is the final step in the practice of bhakti. The devotee in his deep love for God offers himself and his all for the enjoyment of the beloved. He thinks and feels that his body and mind, his intellect and will, all belong to God, all are for the enjoyment of God. Concentrated love for the all-perfect consumes all his selfish desires and ambitions, dissolves all other feelings and sentiments, evaporates all his attachments to mundane objects. His whole being is purified and illumined intense love for God and becomes an object for divine enjoyment. God is really the Self of his whole being.

Man's psycho-physical organism is the most developed individualized embodiment of the Divine Spirit in the cosmic order and is the most suitable vehicle for His sportive self-expression and self-enjoyment. In man the ego becomes self-concious, self-determining, and self-enjoying. He has the innermost urge for the perfection of his self-determination and self-enjoyment. This craving is realized when his self consciousness is identified with divine determination, when his self-enjoyment is identified with divine-enjoyment; when he consciously and freely realized God

as his true self, and his individuality is accomplished through the progressive intensification and deepening of love for God, the Self of selves and the Self of the universe.

What outwardly appears as absolute self-surrender to God is really the perfect self-fulfilment of man in God. What is apparently the destruction of the ego is really the divinization of the ego. When the whole being of the devotee is offered voluntarily and joyfully to God, i.e. the True-Self, for His enjoyment, the whole being is spritualized and becomes full of bliss. All difference between God and man vanishes. The two are united by love in one. The innermost eternal spiritual urge of the soul is then perfectly satisfied. The culture of bhakti attains its sweetest end.

(Extracts from "Discourses on Hindu Spiritual Culture" by His Holiness Shri A.K. Banerjee published by S. Chand & Co.)

अहंकार द्वारा ही मानवता का अंत होता है। अहंकार कभी नहीं करना चाहियें बल्कि हृदय में सेवा भाव रख जीवन व्यतीत करना चाहिये।

– *गुरु नानक देव*

धन को जेब तक ही रखें उसे हृदय में स्थान न दें। जब धन को हृदय में स्थान दिया जाता है तो सुख शांति के स्थान पर लालच, भेदभाव और बुराइयों का जन्म होता है।

– *गुरु नानक देव*

हम जैसा सोचते हैं बाहर की दुनिया बिलकुल वैसी ही है. हमारे विचार ही चीजों को सुंदर और बदसूरत बनाते हैं। सम्पूर्ण संसार हमारे अंदर समाया हुआ है, बस जरूरत है तो चीजों को सही रोशनी में रखकर देखने की।

– *स्वामी विवेकानंद*

ब्रह्मांड की सभी शक्तियां हमारे अंदर हैं। यह हम ही हैं जिन्होंने अपनी आंखों के सामने हाथ रखा है और रोते हुए कहा कि अंधेरा है।

– *स्वामी विवेकानंद*

ईश्वर प्राप्ति का यकीनी जरिया

1. जिक्र खफ़ी का जाप (दिल का जाप) किया करें।
2. नाजिन्स, गैर-आदमी और गैर-सोहबत के नक्शों से दिल को साफ रखें।
3. परमात्मा के सिवाय किसी की तरफ तवज्ज़ो न करें।
4. यकसुई और एकाग्रता के साथ दिल हाजिर रखने का इरादा करें।
5. सत और मालिक की तरफ उनसियत और लगाव हासिल करें।
6. अपने आप को मिटाकर उसी में महव और लय हो जाएं।
7. इसी काम में अपने को मिला दें। सबसे ज्यादा नजदीक रास्ता और असल पद पर पहुँचने का यकीनी जरिया है।

-(महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

Easiest & Most Certain Short-cut to Attain Eternal Bliss

1. Engage yourself in the practice of listening to every heartbeat, super imposing there with the nomenclature of the Lord (AJAPA JAP).
2. Keep your heart pure, away from the corrupting influence of undesirable things and undesirable company.
3. Always keep attuned to the Lord. Your attention should never for a moment be deviating there from.
4. Concentrate your attention on the heart and keep your heart centred in the Lord.
5. Endeavour to attain kinship and attachment to the Eternal truth, the Lord of the Universe.
6. Gradually erase the identity of self, try to merge in and attain oneness with God.
7. Sacrifice life in this grand endeavour.

(Mahatma Ramchandra Ji Maharaj)

Note: The English translation is done by Dr H.N. Saksena

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम संदेश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। चन्दा 100 रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, एस ई 297-शास्त्री नगर, ग़ाज़ियाबाद-201002 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम संदेश डाक द्वारा नहीं भेजा जायेगा। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जायेगा। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

एस ई 297-शास्त्री नगर,

ग़ाज़ियाबाद–201002

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : श्री उमा कान्त प्रसाद

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301